साहित्य के विविध विमर्श

उच्चतर शिक्षा निदेशालय, पंचकूला, हरियाणा से अनुमोदित एवं
गुरु नानक गर्ल्ज कॉलेज यमुनानगर हरियाणा द्वारा आयोजित
एक दिवसीय बहुविषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्र

संपादक

डॉ. गीतू खन्ना

संपादक मण्डल

डॉ. शक्ति, डॉ. अंजू, संदीप कौर

डॉ. लक्ष्मी गुप्ता, डॉ. अमनदीप कौर

साहित्य के विविध विमर्श

संपादक

डॉ. गीतू खन्ना

संपादक मंडल

डॉ. शक्ति, डॉ. अंजू, संदीप कौर

डॉ. लक्ष्मी गुप्ता, डॉ. अमनदीप कौर

विकास बुक कम्पनी

नई दिल्ली-110002

11. साहित्य और राजनीति 88
नितिन सुभाषराव कुंभकर्ण
12. Role of communication shaping the Indian literature 93
Dr Gunjan Sharma
13. साहित्य और बाल विमर्श 98
डॉ वन्दना गुप्ता
14. साहित्य में स्त्री विमर्श 104
साईमीरा जोशी
15. साहित्य में बाल विमर्श 108
अमित कुमार
16. डॉ॰ शांतिस्वरूप कुसुम के काव्य में पौराणिक कथाओं में नारी और समाज 113
रवि कुमार
17. Yog in Indian Literature 118
Dr Meenakshi Gupta
18. साहित्य में सांस्कृतिक पक्ष 123
डॉ. गीतू खन्ना
19. हिन्दी साहित्य में पर्यावरण विमर्श 130
डॉ. शक्ति बुद्धिराजा
20. हिन्दी साहित्य और बाल विमर्श 136
डॉ. अंजु बाला
21. हिन्दी साहित्य पर राजनीति का प्रभाव 145
संदीप कौर
22. ग्रामीण संदर्भ एवं स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास 152
डॉ. लक्ष्मी गुप्ता
23. हिन्दी साहित्य में बाजारवाद 160
डॉ. अमनदीप कौर
24. हिंदी साहित्य में बाल कथा विमर्श 166
मिस दीपमाला
25. भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का वर्तमान स्वरूप और इसका महत्त्व 173
मोनिका चोपड़ा
26. वर्तमान युग में बोध एवं आचरण में सामंजस्य जैन-आदिपुराण के संदर्भ में 177

हिन्दी साहित्य में बाजारवाद

डॉ. अमनदीप कौर
सहायक प्रवक्ता
गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज
सन्तपुरा, यमुनानगर

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में घटित घटनाएं साहित्य में साकार रुप में प्रतिफलित होती हैं। आज का समय भूमंडलीकरण का समय है, जिसे वैश्वीकरण, विश्वायन, बाजारीकरण, उदारीकरण आदि के नाम से भी जाना जाता है। आज कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना, जनसंचार माध्यमों पर बाजारवाद का व्यापक प्रभाव है। भूमंडलीकरण, सूचना एवं संचार की क्रांति ने बाजारवाद का बहुत पोषण किया है। इससे मनुष्यता के समक्ष नये-नये संकट उत्पन्न हो गये हैं। बाजारवाद 21वीं सदी के वैश्वीकरण की एक विश्वस्तरीय व्यापार नीति है यह खुले बाजार के लिए राष्ट्रीय सीमाओं के प्रतिबंधों को समाप्त करने का एक विचार है। बाजारवाद समाज और संस्कृति पर बाजार के माध्यम से अपना वर्चस्व स्थापित करता है। नव पूंजीवादी समाज में बाजारवादी अवधारणा का ऐसा प्रभाव पड़ा कि फिल्म, फैशन, विचार, विज्ञापन, संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला, मीडिया एवं साहित्य सभी इसके प्रभावी क्षेत्र बन गए।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रत्येक कालखंड में बाजार का वर्णन मिलता है। सन्त कवियों के काव्य में शिक्षा और उपदेश देने के लिए बाजार को स्थान दिया गया। बाजार मनुष्य जीवन की भौतिक आवश्यकताओं का पूर्ति स्थल है। सन्त कवियों ने मेलों, हाट आदि का भी उल्लेख किया है। बाजार और मेले मानव जीवन के आनन्द, उमंग और उल्लास से जुड़े हुए हैं। बाजार आपस में भेंट करने और सूचनाओं के आदान-प्रदान का सर्वोत्तम साधन है। बाजार के माध्यम से ही वस्तु-विनिमय के द्वारा सुख-दुख का आदान-प्रदान भी होता है।

कविता का भी बाजार से रिश्ता रहा है– 'कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ' के माध्यम से बाजार के साथ जिस विद्रोहमूलक रिश्ते की शुरुआत की, वह निरंतर आगे बढ़ता रहा। पहले बाजार एक सामाजिक - आर्थिक इकाई था, जो आज एक सत्ता के रूप में स्थापित हो चुका है। उपभोक्तावाद ने जीवन की महत्ता और मूल्यों को वस्तुओं में तब्दील कर दिया है। आज मनुष्य भी एक वस्तु बन चुका है। स्वप्निल श्रीवास्तव लिखते हैं– "एक सुबह उठा और पाया, सारी दुनिया बन चुकी है बाजार, सब बाजार की भाषा बोल रहे हैं, केवल क्रेता-विक्रेता बचे हुए हैं, लोग मेरे साथ इस तरह का बर्ताव कर रहे हैं, जैसे मैं कोई वस्तु हूं।"[1]

इसी प्रकार सगुण साकार कृष्ण भक्त गोपियां भी निर्गुण निराकार उद्धव को खरी खोटी सुनाती हुई कहती हैं– 'आयो घोष बड़ो व्यापारी'।

भूमंडलीकरण मूलतः नव उपनिवेशवाद है, जो व्यापार के जरिए संस्कृति, भाषा, आचार-आचरण सब पर अपना प्रभाव डालता हुआ, बाजार पर कब्जा करते हुए, भाषा, संस्कृति और मानवता को बाजारु बनाने की रणनीति है। इसके लिए भौगोलिक सीमाएं बेमानी है। यह बाजार के माध्यम से दूसरे राष्ट्रों में प्रवेश करता है। वहां की संस्कृति को प्रभावित करता है। यह सर्वविदित है कि अंग्रेज़ मूलतः व्यापारी बनकर बाजार के उद्देश्य से ही भारत आए थे। उसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने बाजार की जड़ें इतनी पक्की कर दी कि वे सैंकड़ों वर्षों तक देश के शासक बनकर सत्तासीन रहे। बाजार में वस्तुओं की बिक्री एवं खरीददारी तो उचित है परन्तु ऐसा भी देखने को मिलता है कि इन्सानों को खरीदकर उन्हें गुलाम बनाया जाता है। प्रगतिवादी युग में नागार्जुन लिखते हैं कि - 'बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर, सारा जहां देखता है'।

भूमंडलीकरण ने साहित्य को भी उत्पाद में बदल दिया है। आज बाजार की मांग के अनुसार साहित्य के सरोकार, वस्तु, शिल्प में भी बदलाव किये जा रहे हैं। इसमें मंनोरंजन, उत्तेजना और सनसनी पैदा करने वाले तत्त्वों की घुसपैठ बढ़ी है। साहित्य का बाजार तैयार किया जा रहा है, किताबों की मार्केटिंग के लिए नई-नई रणनीतियां तैयार की जा रही है। साहित्य सृजन में अपनी पैठ बना चुके बाजारवाद ने प्रकाशकों, लेखकों और समीक्षकों की भी दृष्टि बदल दी है। भगवतीचरण वर्मा का कविता संग्रह 'एक दिन' की रचना की कहानी ऐसी ही है, उन्होंने पैसे की जरुरत हेतु एक ही दिन में इस कविता-संग्रह को पूरा किया और प्रकाशक के हवाले करके अपनी अर्थ विवेचना को दूर किया। वर्मा जी, श्रीलाल शुक्ल से कहते हैं– "अरे, कविता लिखने में कुछ लगता है? पहले मैंने नोटबुक के पृष्ठों को गिना, फिर उतनी कविताएं लिख डाली और संग्रह का नाम 'एक दिन' रख दिया, क्योंकि एक

ही दिन में कम्पलीट किया था।"[2]

कथा साहित्य और उपन्यास दोनों का ही यथार्थवाद से बहुत नजदीक का संबंध है। इसलिए बाजारबाद के प्रभावों का विश्लेषण इनमें अधिक सशक्त ढंग से हो सका है। बाजारवाद ने पूरी दुनिया में आर्थिक असमानता का विस्तार किया है। बाजारवाद के पहले भी दुनिया में गरीबी थी, परंतु इतनी अधिक असमानता नहीं थी। एक तरफ तो अमीरी के पहाड़ खड़े हुए हैं तो दूसरी ओर गरीबी की खाइयां भी बढ़ गयी हैं। धन के विस्तार ने लोगों के सुख-चैन को छीन लिया है। समाज से करुणा का तत्त्व गायब होने लगा है। दुनिया पहले ही महानगरीय सभ्यता के बोझ तले दबी हुई थी, रही सही कसर बाजारवाद ने पूरी कर दी। समृद्धि की चकाचौंध के नीचे दम तोड़ते मानवीय संबंधों की कहानियों से कौन परिचित नहीं है। एक अजीब किस्म की लालसा ने मनुष्य जीवन को भर दिया है, जिसे पाने की चाह में वह जमीन- आसमान एक किए हुए है। इन्हीं सब त्रासदियों का चित्रण उपन्यासकारों ने बड़े मनोयोग से किया है। उपन्यास विधा अपने विस्तृत फलक पर बाजारवाद की समस्याओं को और भी विस्तार तथा गहराई में जाकर विश्लेषित करने की स्थिति में है।

हिन्दी उपन्यास ने बहुत सूक्ष्म संवेदना, गहराई और विस्तार में जाकर देश, समाज और व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कथात्मक धरातल पर किया है। डॉ. पुष्पपाल सिंह ने वर्ष 2007 के तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "बड़े-बड़े स्टॉकिस्ट टीवी, फ्रिज, एसी, वाशिंग मशीन आदि के लिए उधार आसान किस्तों पर उपलब्ध करा रहे हैं फिर भी दिल नहीं ललचाता तो किसी के साथ मुफ्त बैग, कोई सस्ती घड़ी या ऐसी ही फालतू फंड की वस्तु रिझाने के लिए दी जाती है। यदि आप किसी स्टाकिस्ट, शोरूम से उधार नहीं लेना चाहते तो बैंक आपके द्वारे आ-आकर क्रेडिट कार्ड, उधार का लाइसेंस, बड़ी आसान शर्तों पर उपलब्ध करा रहे हैं। फिर भी बटुए का मालिक इन बहकावों-फुसलावों के बारे में कहते हैं, "हम मार्केटिंग के आदमियों का एक पांव इधर, तो दूसरा पांव नारद मुनि की तरह कहीं ओर रहता है। नारद मुनि की तरह हम कहीं टिकते नहीं और उन्हीं की तरह थोड़ी-सी बात इधर की उधर और उधर की इधर तो हो ही जाती है।"[3]

प्रेमचन्द के कथा साहित्य में बाज़ार का सुन्दर और कुरूप चेहरा क्रमशः 'ईदगाह' और 'कफन' कहानी में मिलता है। एक और 'ईदगाह' में जहां नन्हा हामिद भूख सह कर भी बाजार के प्रलोभनों पर विजय प्राप्त करता है और अपनी वृद्ध दादी के लिये चिमटा खरीदता है, जिस से रोटियाँ सेंकते समय उन के हाथ न जलें। यह कहानी बाजार पर मानवीयता की विजय है। वहीं दूसरी ओर 'कफन' में बुधिया की

मृत्यु पर आस-पास के लोगों से एकत्र पैसों से घीसू और माधव कफन में पैसे व्यर्थ खर्च न कर के उस से न केवल उदरपूर्ति करते हैं, शराब भी पीते हैं। यहां मानव जीवन के शाश्वत मूल्यों पर बाजार हावी हो जाता है। वर्तमान समाज ईदगाह के स्थान पर कफन की दृष्टि का अनुगामी बन चुका है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कथा 'उसने कहा था' में भी दोनों बच्चों की भेंट, बातों और कथा के लालित्य का आधार बाजार की जीवन्तता ही रही है।

मुंशी प्रेमचंद 'गबन' उपन्यास में बाजारवाद और मानवीय मूल्यों के बीच उभरते संघर्ष को भी उजागर करते दीख पड़ते हैं। भले ही इस उपन्यास को समीक्षकों ने पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों से व्याख्यायित किया हो। लेकिन 'गबन' उपन्यास की भूमिका में परमानंद श्रीवास्तव स्पष्ट रुप से कहते हैं– " 'गबन' का आरंभ 'चंद्रहार' के लिए जालपा के बालमन के आकर्षण से संबद्ध है। उपन्यास के पहले दृश्य में वर्षा, हरियाली, कजली गाने, झूला झूलने का उत्साह भरा वातावरण है। तभी सहज लोक जीवन में बाजार हस्तक्षेप करता है।"[4] प्रेमचंद बड़ी तटस्थता के साथ लालसा और लुभावना प्रवृत्ति का खंडन करते हैं। उपन्यास में आगत 'चंद्रहार' चलते- फिरते बाजार का द्योतक है। बिसाती अपनी संदूक जब खोलता है, तब चंद्रहार जालपा का मन मोह लेता है। इसी 'चंद्रहार' के कारण जालपा के मन में पहले मां के प्रति असूया पनपती रही। जब रमानाथ से शादी हुई, तब से 'चंद्रहार' जैसे आभूषण के कारण पति- पत्नी के बीच गहरा संघर्ष का बीज बोया और रमानाथ अपने ही दफ्तर के पैसे 'गबन' करके जालपा को 'चंद्रहार' देने के चक्कर में आकर मानवीय मूल्यों के साथ खिलवाड़ करके स्वयं अमानवीय मूल्यों के खेल का पात्र बन जाता है। बाजार की चीज़ें सभी उम्र के लोगों को आकर्षित करती हैं। इसी आकर्षण में न जाने कब कैसे कौन व्यक्ति अपना मनुष्यत्व तथा पारिवारिक एवं सामाजिक सरोकार तथा रिश्तों को खो बैठता है, इसका किसी को पता तक न चल पाता है। अतः 'गबन' उपन्यास में बाजार से बाजारवाद तक के सभी सूत्रों को रेखांकित करने का सफल प्रयास प्रेमचंद जी ने किया है।

साहित्य जगत भी बाजारवाद से अछूता नहीं रहा। बाजार तत्व के जरिए ही फिरंगियों ने भारत पर राज किया। वर्तमान बाजार भूमंडलीकरण के द्वारा आम जनता तक पहुँच गया है। उसकी चपेट से बच पाना असंभव नज़र आता है। लेकिन हिंदी साहित्य में मानवीय मूल्यों के प्रति सजग प्रेमचंद जी और अन्य रचनाकारों ने इससे बचने के नुक्से हमें जरूर दिए हैं। उन्हें केवल आत्मसात करने की जरूरत है। इस संदर्भ में श्यामसुंदर दुबे जी का कथन द्रष्टव्य है– "भूमंडलीकृत बाजारवाद इस क्षेत्र में घुसकर भी अपना प्रभाव दिखला रहा है। लोक के मानवीय मूल्यों से रहित यह

बाजारवाद शोषितों के शोषण के लिए ही कटिबद्ध है।"[5]

"बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में जिस तेजी से समय में परिवर्तन आया और सामाजिक जीवन का प्रायः प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित हुआ, उसे हिन्दी उपन्यासों ने चित्रित करने की महत्वपूर्ण कोशिश की है ... यह वह दौर है जब सूचना क्रांति ने सदियों पुराने भारतीय समाज के ताने-बाने को तहस-नहस किया। बाजारवाद का प्रभुत्व कायम होने लगा, मानवीय संयंत्रों के मान बदलने लगे, जीवन की बुनियादी प्रवृत्तियों में भी तेजी से बदलाव हुआ। राजनीति भी बदली, उसके भी मान-मूल्य बदले, जनता के प्रति उसकी पक्षधरता में कमी आयी। साम्प्रदायिकता उभरी, जातियों के बीच भेदभाव पैदा हुआ, ऐसे में सब भौंचक रह गए हैं कि उनकी क्या भूमिका हो?"[6] भूमंडलीकृत भारत के हिंदी औपन्यासिक परिदृश्य में भगवानदास मोरवाल के 'काला पहाड़' में मेवात को कथ्य बनाकर मुस्लिम परिवेश को प्रस्तुत किया गया है– "इं वही मेवात है जाके मेवन्ने सैंतालिस की भग्गी में जिन्ना का बहकावा में न आने पाकस्तान जाण सु साग मना कर दी।"[7] लेकिन इन बदकिस्मत गांवों को अंग्रेजों ने जरूरी सहूलियतों से महरूम किया ही बल्कि आजादी के बाद आज भी ये गाँव उन सहूलियतों से महरूम हैं। परिणाम यह कि लोग रोजी, रोजगार की तलाश में बड़े नहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

नासिरा शर्मा ने 'कुइयां जान' और 'जीरो रोड' में मुस्लिम परिवेश को भूमंडलीकृत, बाजारवाद की गिरफ्त का समय प्रस्तुत किया। 'कुइयां जान' में मुस्लिम पारिवारिक परिवेश में 'जल संकट-जल सम्पदा' के निरंतर त्रास की समस्या को बड़ी गहरी कथात्मक संवेदना से उठाया गया है। 'जीरो रोड' दुबई के जीवन पर केन्द्रित उपन्यास है, जिसमें इलाहाबाद से दुबई गया सिद्धार्थ अपना जीवन बनाने की कोशिश में दुबई के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक स्थितियों को प्रकट करता है। उपन्यास सांस्कृतिक विस्थापन की समस्याओं से जूझता है।

भूमंडलीकरण के कारण देश में आए बदलाव में महानगर और नगर ही नहीं गांव और तीर्थस्थल भी प्रभावित हुए हैं। भौतिकता, बाजारीकरण और बढ़ती आधुनिकता के फलस्वरूप आए बदलाव के साथ ही इस कारण से उपजी विकृतियों को इस अवधि के उपन्यासों में पूरी शिद्दत के साथ प्रकट किया गया है। परिवारों में उपजे विघटन की स्थिति और लोगों के अंदर पनपती महत्त्वाकांक्षा जैसे तमाम पहलू उपन्यासों में उजागर हुए हैं, जो वर्तमान यथार्थ में साक्षात्कार कराते प्रतीत होते हैं।

साहित्य में संवेदनशीलता का होना आवश्यक है क्योंकि संवेदनहीन साहित्य

जीवन्त नहीं होता। सामाजिक परिवर्तन ही साहित्य का मूल उद्देश्य है। बाजारवाद ने जितना प्रभावित मनुष्य या समाज को किया है उतना ही प्रभावित साहित्य को भी किया है। बाजार, समाज और संस्कृति एक-दूसरे से अन्तः संबंधित हैं इसलिए साहित्य समाज का ही एक हिस्सा होने के कारण ही बाजार और बाजारवाद से अन्तः संबंध रखता है। साहित्य और बाजार के द्वन्द्वात्मक संबंधों पर प्रकाश डालते हुए लेखक बद्री नारायण कहते हैं– "साहित्य की प्रकृति समावेशी होती है इसलिए बाजार अगर बहिष्कारी प्रक्रिया है तो साहित्य समावेशी। बाजार मानव संबंधों का निर्माण करता है और साहित्य के लिए आधार प्रस्तुत करता है। दूसरे स्तर पर बाजार साहित्य के लिए विरोधी मूल्यों का सृजन करता है इसलिए साहित्य और बाजार दोनों के बीच में हमें द्वन्द्वात्मक संबंध देखने की जरुरत है ... बाजार भी मूल्यों का सृजन करता है व साहित्य भी मूल्यों का सृजन करता है तथा दोनों में संवाद के साथ-साथ विरोध भी है। साहित्य जिस दिल और जान पर टिका है बाजार उसे ही बेच देता है।"[8] साहित्य संवेदना का कार्य करता है और बाजार उसे प्रेरित करता है। भूमंडलीकृत बाजारवादी युग में साहित्य सृजन करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि साहित्य की रचना द्वारा समाज की विसंगतियों को उजागर कर उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्वप्निल श्रीवास्तव - पल प्रति पल, अंक 42, पृ. 169
2. भगवतीचरण वर्मा, लेखक-श्रीलाल शुक्ल-पृ. 30
3. एक ब्रेक के बाद, अलका सरावगी, पृ. 8
4. 'गबन' (उपन्यास की भूमिका से), लेखक-परमानंद श्रीवास्तव-पृ.7
5. लोक : मानव-मूल्य और मीडिया, लेखक-श्यामसुंदर दुबे-पृ.102
6. उपन्यास की समकालीनता, ज्योतिष जोशी, पृ. 151
7. काला पहाड़, भगवानदास मोरवाल, पृ. 15
8. बद्री नारायण, साहित्य और समय : अन्तःसम्बन्ध पर पुनर्विचार, पृ. 62